होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम

परीक्षा प्रणाली में बदलाव का प्रयास

सुशील जोशी

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका) की शुरुआत 1972 में दो स्वैच्छिक संस्थाओं - किशोर भारती और फ्रेंड्स रूरल सेंटर - द्वारा 16 सरकारी मिडिल स्कूलों में हस्तक्षेप के साथ हुई थी। कार्यक्रम में पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण पद्धति, शिक्षक प्रशिक्षण, कक्षा के कारोबार में परिवर्तन के अलावा परीक्षा को एक ऐसा रूप दिया गया जो रटी हुई जानकारी को उगलवाने की बजाय अवधारणात्मक विकास का आकलन करे, प्रायोगिक कुशलता, तार्किक सोच की जांच करे और तनाव से मुक्त हो।

कार्यक्रम की अन्य चीजों की तरह परीक्षा की प्रणाली भी धीरे-धीरे अनुभवों से ही विकसित हुई। होविशिका समूह का स्पष्ट मत था कि सर्वोत्तम परीक्षा तो वही होगी जो शिक्षक स्वयं ले। इस परीक्षा का मकसद यह होगा कि शिक्षक पता लगा सके कि बच्चे उस समय तक क्या-क्या सीख चुके हैं और कौनसी बातें सीखने के लिए तैयार हो गए हैं, कहां और अनुभव, मदद व समय की जरूरत है। इसलिए शिक्षकों के साथ प्रारंभिक दौर के वार्तालाप में आग्रह रहता था कि आंतरिक मूल्यांकन का महत्त्व अधिक होना चाहिए।

बच्चों का पहला बैच 1974-75 में कक्षा 8 में पहुंचा था (म. प्र. में उस समय कक्षा 8 संभागीय बोर्ड परीक्षा होती थी)। राज्य शासन ने एक महत्त्वपूर्ण व साहसिक कदम उठाते हुए यह व्यवस्था की थी कि होविशिका के अन्तर्गत शामिल 16 स्कूलों में कक्षा 8 में विज्ञान विषय की परीक्षा फ्रेंड्स रूरल सेंटर व किशोर भारती द्वारा आयोजित की जाएगी और इस परीक्षा को बोर्ड परीक्षा के तुल्य मान्यता होगी। आगे चलकर कार्यक्रम के प्रसार के बाद भी शासन ने परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन की अनुमति को जारी रखा था हालांकि परीक्षा का संचालन संभागीय बोर्ड को सौंप दिया गया था।

लिहाजा कार्यक्रम में शामिल 16 स्कूलों की कक्षा 8 की बोर्ड परीक्षा 1975 से लेकर 1980 तक किशोर भारती व फ्रेंड्स रूरल सेंटर द्वारा आयोजित की जाती थी। होविशिका स्रोत समूह का पहला निर्णय यह था

कि कार्यक्रम में लिखित व प्रायोगिक दोनों तरह की परीक्षा ली जाएगी - 60 अंक लिखित परीक्षा के लिए और 40 अंक प्रायोगिक परीक्षा के लिए रहेंगे।

प्रायोगिक परीक्षा

प्रयोग/अवलोकन विज्ञान के अभिन्न अंग हैं। चूंकि होविशिका में बच्चों को विज्ञान की प्रक्रिया में जोड़ने की कोशिश हो रही थी, लाजमी था कि बच्चों के प्रायोगिक कौशल की भी जांच की जाए। इसलिए कार्यक्रम में अलग से प्रायोगिक परीक्षा की व्यवस्था की गई थी।

उस समय भी और आज भी कक्षा 8 के स्तर पर प्रायोगिक परीक्षा जैसी कोई चीज नहीं होती। हाई स्कूल के स्तर पर जो प्रायोगिक परीक्षा होती है उसकी प्रकृति होविशिका की प्रायोगिक परीक्षा से सर्वथा अलग है। आम तौर पर प्रायोगिक परीक्षा के लिए प्रयोगों की एक सूची तैयार की जाती है और छात्रों से अपेक्षा होती है कि वे प्रयोगशाला में जाकर इन प्रयोगों को 'सीख' लेंगे और परीक्षा में इन्हीं में से एक या दो प्रयोग करने को दिए जाएंगे। इन प्रयोगों में प्रायः गुरुत्व त्वरण या कांच के अपवर्तनांक जैसी किसी जानी-मानी राशि का जाना-माना मान निकालना होता है।

होविशिका में तो प्रयोग पाठ्यक्रम की बुनियाद थे। प्रयोगों की भूमिका सत्यापन की नहीं थी बल्कि सीखने के लिए उपयुक्त अनुभव, सवाल व जानकारी प्रदान करने की थी। अतः प्रायोगिक परीक्षा में जांच सिर्फ इस बात की नहीं होती थी कि बच्चे 'रटे-रटाए' प्रयोग करके 'सही' उत्तर तक पहुंच पाते हैं या नहीं। होविशिका में प्रायोगिक कौशल की जांच के साथ-साथ इस बात की भी जांच होती थी कि क्या बच्चे प्रयोग करके प्राप्त सूचनाओं का उपयोग तार्किक निष्कर्ष निकालने के लिए कर सकते हैं या किसी परिकल्पना की जांच के लिए प्रयोग डिजाइन कर सकते हैं। इसलिए होविशिका में प्रायोगिक परीक्षा के लिए प्रयोगों की कोई सूची नहीं थी। इसकी बजाय उन अवधारणाओं, कुशलताओं व क्षमताओं का खाका दिया गया था जिनकी जांच की जानी है। इस जांच के लिए प्रयोग कुछ भी हो सकते थे। प्रायोगिक परीक्षा की दृष्टि से पाठ्यक्रम के 6 भाग किए गए थेः

1. मापन
2. पर्यावरण के प्रति सजगता
3. रसायन
4. वैज्ञानिक प्रक्रियाएं
5. विषयगत अवधारणाएं
6. स्थानीय स्रोतों से उपकरण बनाना, दिए हुए निर्देशों से प्रयोग करना।

शुरू में व्यवस्था यह थी कि दो परीक्षकों की टोली प्रत्येक स्कूल में जाएगी और ये दोनों परीक्षक मिलकर प्रश्न पत्र तैयार करेंगे और परीक्षा के तुरन्त बाद मौके पर ही उत्तर पुस्तिकाओं की जांच का काम कर लेंगे।

लेकिन प्रायोगिक परीक्षा को लेकर कुछ व्यवहारिक व कुछ मानवीय परेशानियां थीं। एक तो समस्या मौके पर प्रायोगिक प्रश्न बनाने की थी। सारे परीक्षक स्वयं बहुत अच्छे प्रयोग नहीं सोच पाते थे जिनकी मदद से बच्चों का उचित मूल्यांकन हो सके।

मानवीय दिक्कतों में पहली यह थी कि स्कूल में ही बैठकर मूल्यांकन करने से परीक्षक तटस्थता से काम नहीं कर पाते थे; सामने बैठे छात्र को फेल कैसे करें? दूसरी मानवीय दिक्कत यह थी कि स्कूल में स्थानीय शिक्षक व अन्य लोगों का दबाव भी बहुत अधिक होता था। इस वजह से प्रायोगिक परीक्षा की वस्तुनिष्ठता पर खुद शिक्षक भी सवाल उठाने लगे थे।

जब प्रायोगिक परीक्षा के मुद्दे पर शिक्षकों से सलाह-मशविरा किया गया तो दो परस्पर विरोधी किस्म के सुझाव सामने आए। एक थे जिनमें प्रायोगिक परीक्षा को ज्यादा कारगर बनाने के लिए अधिक विकेन्द्रीकरण की बात कही गई थी

ताकि स्कूल की परिस्थिति का ध्यान रखा जा सके और बच्चों की प्रायोगिक कुशलता का सही आकलन हो सके। इस समूह का कहना था कि प्रायोगिक कुशलता का आकलन तो रूबरू ही किया जा सकता है। दूसरे किस्म के सुझाव केन्द्रीकरण के थे और परीक्षा के स्तर व एकरूपता की चिन्ता से प्रेरित थे। दरअसल दोनों ही जरूरी हैं। तो सवाल यह था कि परीक्षा के स्तर से समझौता किए बगैर उसे किस तरह स्कूलों की परिस्थिति के प्रति संवेदी बनाया जाए।

इन जरूरतों के मद्देनजर प्रायोगिक परीक्षा की व्यवस्था में थोड़ा बदलाव किया गया। नई व्यवस्था के तहत प्रायोगिक परीक्षा के प्रश्न पत्र संगम केन्द्र पर शिक्षकों के एक दल द्वारा बनाए जाते थे। जहां शिक्षक दो-दो, तीन-तीन की टोलियों में काम करके प्रायोगिक परीक्षा के लिए कई सारे प्रश्न बना देते थे। इन प्रश्नों में से अलग-अलग स्कूलों के लिए पांच-पांच प्रश्नों के सेट बनाकर लिफाफों में बन्द करके संबंधित परीक्षकों को दे दिए जाते थे। उनका काम इतना ही था कि संबंधित स्कूल में जाकर प्रश्न पत्र खोलें और परीक्षा का संचालन करें।

बच्चों की उत्तर पुस्तिकाओं की जांच बाद में संगम केन्द्र के स्तर पर की जाती थी। कुछ अंक प्रयोग करने में छात्र की कुशलता, साफ-सुथरेपन आदि के लिए रखे गए थे और इनका निर्णय परीक्षक मौके पर ही करके उत्तर पुस्तिका पर अंकित कर देते थे।

इस नई व्यवस्था ने प्रायोगिक परीक्षा की प्रकृति पर असर डाला था। सबसे प्रमुख असर यह हुआ था कि अब प्रश्न पत्र बनाते समय ध्यान रखना होता था कि प्रयोग ऐसे हों जिनके किए जाने का कोई प्रमाण उत्तर पुस्तिका में नत्थी किया जा सके या किसी अन्य तरह से पता चल सके कि बच्चे ने प्रयोग किया है।

लिखित परीक्षा

कार्यक्रम के प्रारंभिक वर्षों में लिखित परीक्षा असीमित समय और खुली किताब वाली थी। खुली किताब तो जिला स्तरीय प्रसार के बाद भी जारी रही मगर असीमित समय की बात अव्यवहारिक होने के कारण त्यागनी पड़ी।

वैसे कई वर्षों तक तो परीक्षा में बच्चों को सिर्फ पाठ्यपुस्तक (बाल वैज्ञानिक) और अपनी नोटबुक ही नहीं, कोई भी किताब लाने की छूट थी हालांकि सत्तर के दशक में ग्रामीण भारत की परिस्थिति में इस बात का कोई व्यवहारिक महत्त्व शायद न रहा हो। इसके अलावा उन्हें यह भी छूट थी कि वे प्रश्न पत्र को दो बैठकों में हल करें और दो बैठकों के बीच वे आपस में बात कर सकते थे। स्कूली परीक्षा में असीमित समय का तो शायद यह देश का पहला उदाहरण होगा और साथियों से बात करने की अनुमति तो शायद आज भी अकल्पनीय लगे। बहरहाल, लिखित परीक्षा संबंधी कुछ प्रक्रियाओं पर नजर डालते हैं।

लिखित परीक्षाः प्रश्न पत्र का सामूहिक निर्माण

सामूहिक रूप से प्रश्न पत्र निर्माण को जिला स्तरीय प्रसार के बाद भी स्वीकार किया गया था। सोलह स्कूलों के दौर में तो प्रश्न पत्र निर्माण का काम स्रोत दल द्वारा ही किया जाता था और इसमें काफी बड़े समूह की भागीदारी होती थी। इस प्रक्रिया को लेकर गोपनीयता संबंधी सवाल यदा-कदा उठे हैं मगर कुल मिलाकर शिक्षकों ने इसे एक सकारात्मक कदम मानकर उत्साह से इसमें हिस्सा लिया है। प्रश्नों व प्रश्न पत्र की गुणवत्ता पर भी इसका अच्छा असर हुआ।

प्रश्न पत्र बनाने के लिए करीब 30-40 शिक्षकों की एक तीन-दिवसीय गोष्ठी दिसंबर-जनवरी में होती थी। गोष्ठी में सबसे पहला काम पिछले वर्ष के प्रश्न पत्र की समीक्षा का होता था। हरेक प्रश्न को कार्यक्रम के उद्देश्यों की कसौटी पर परखा जाता था और पूरे प्रश्न पत्र में संतुलन पर भी ध्यान दिया जाता था। उद्देश्य यह था कि पिछले वर्ष के प्रश्नों व प्रश्न पत्र की खूबियों व कमियों को पहचानकर इस वर्ष का काम उससे आगे बढ़े। एक फायदा यह था कि पहली बार इस प्रक्रिया में शरीक हुए शिक्षकों को प्रश्नों की प्रकृति तथा परीक्षा के व्यापक उद्देश्यों से एक परिचय प्राप्त हो जाए। समीक्षा के दौरान इस बात पर भी ध्यान दिया जाता था कि विभिन्न प्रश्नों में बच्चों का प्रदर्शन कैसा रहा था। यदि इस समीक्षा प्रक्रिया को सतर्कता से किया जाए तो यह पाठ्यक्रम व शिक्षण पद्धति में सुधार का एक उम्दा आधार बन सकती है और बनी।

इसके बाद शिक्षक टोलियों में बैठकर एक-एक प्रश्न पत्र बनाते थे। प्रश्न पत्र के साथ उन्हें मूल्यांकन निर्देश भी बनाने होते थे और प्रत्येक प्रश्न के अंक भी निर्धारित करने होते थे। अंक प्रश्न पत्र पर अंकित नहीं किए जाते थे। (ये अंक प्रारंभिक हैं, और परीक्षा के बाद इन पर पुनर्विचार होगा तथा एक सांख्यिकीय विधि द्वारा इनका पुनर्निधारण किया जाएगा।) इन प्रश्न पत्रों को अलग-अलग सीलबंद लिफाफों में आगे की प्रक्रिया के लिए संभागीय शिक्षा अधीक्षक कार्यालय को सौंप दिया जाता था।

इसके बाद सब छात्रों की परीक्षा होती थी, जैसे कोई भी बोर्ड परीक्षा होती है। मगर एक अंतर था। छात्रों को अपनी तीनों वर्षों की पाठ्यपुस्तक व रिकॉर्ड बुक साथ में रखने व देखने की अनुमति थी।

खुली किताब

परीक्षार्थियों को परीक्षा भवन में पुस्तकें और अपनी अभ्यास पुस्तिकाएं ले जाने की छूट दी गई ताकि यह अपेक्षा न रहे कि विद्यार्थियों को सब जानकारी, तथ्य, परिभाषाएं या प्रयोग विधियां रटकर परीक्षा देने आना है। इसके साथ यह कोशिश भी होती थी कि यदि किसी प्रश्न को हल करने में किसी जानकारी की जरूरत पड़ेगी तो वह जानकारी प्रश्न के साथ ही दे दी जाए।

इन बातों से रटने की प्रवृत्ति पर रोक लगी और परीक्षा से जुड़ा तनाव भी काफी हद तक कम हुआ। साथ ही इसने प्रश्न पत्र बनाने वालों के लिए अच्छी खासी चुनौति उपस्थित की क्योंकि प्रश्न ऐसे होने चाहिएं जिनके उत्तर सीधे-सीधे पाठ्यपुस्तक में से टीपे न जा सकें।

अलबत्ता, खुली किताब परीक्षा को लेकर कई सवाल रहे, खासकर पालकों की ओर से। एक तो यह कहा जाता था कि परीक्षा में किताब लाने की छूट देने से बच्चों में नकल की प्रवृत्ति बढ़ती है। इसके पीछे समझ यह झलकती है कि पुस्तक का (खासकर पाठ्यपुस्तक का) एकमात्र उपयोग रटने या नकल करने के लिए किया जा सकता है। परीक्षा को लेकर यह समझ हावी है कि मुख्य जांच तो स्मरण शक्ति की होनी चाहिए और बच्चों को मात्र अपनी याददाश्त के आधार पर ही जवाब देने चाहिएं। यदि किताब सामने है, तो परीक्षा किस बात की हो रही है! इस संबंध में यह स्पष्टीकरण पालकों को और भी भ्रमित कर देता था कि परीक्षा में किताब में से सवाल नहीं पूछे जाएंगे (इसलिए किताब से उस तरह की मदद नहीं मिलेगी)। इस स्पष्टीकरण पर सवाल होता था कि जब उत्तर किताब में नहीं मिलेंगे तो फिर ऐसी किताब साथ रखने का क्या फायदा। यानी, किताब वही जो उत्तर बतलाए। किताब को रेफर किया जा सकता है, उत्तर ढूंढ़ने में वह मदद कर सकती है, जैसी बातें मानस का अंग आज भी नहीं हैं।

खुली किताब परीक्षा को लेकर एक और तरह के सवाल भी थे जिनका संबंध भी पाठ्यपुस्तक की उपरोक्त छवि से है। शिक्षक प्रायः यह कहते थे कि किताब साथ होने से बच्चे काफी समय तक उसे उलट-पलटकर जवाब ढूंढ़ने की कोशिश करते रहते हैं और समय गंवाते हैं। बात वही है कि बच्चे भी यही समझते हैं कि किताब का यही तो उपयोग है कि उसमें परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर मिलने चाहिएं। यहां यह बात उठाना जरूरी है कि संभवतः

शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों के साथ भी किताबों के उपयोग को लेकर कोई खास काम नहीं किया गया। इसलिए उनके सामने भी कोई स्पष्ट चित्र नहीं था कि परीक्षा में (या वैसे भी) किताब का (रट्टा मारने के अलावा) क्या उपयोग है।

खुली किताब परीक्षा होने के कारण एक बात और भी होती थी। आम तौर पर 'परीक्षा की तैयारी' करने का मतलब समझा जाता है कि पाठ्यपुस्तक या कम से कम उसमें दिए गए प्रश्नों के उत्तरों को एक बार फिर याद किया जाए। जब परीक्षा में किताब खोलकर देखने की छूट है तो परीक्षा की तैयारी क्या करें? जहां पालकों को यह बात ठीक नहीं लगती थी वहीं बच्चों को यह बात बहुत अच्छी लगती थी। बच्चों ने इस बात को कई बार अभिव्यक्त किया है। कार्यक्रम बंद होने के बाद किए गए एक अध्ययन में भी बच्चों ने इस बात का जिक्र किया था। बच्चों को प्रायोगिक परीक्षा की याद तो एक उत्सव के रूप में ज्यादा थी।

अंकों का पुनर्निर्धारण

जैसा कि पहले कहा गया, होविशिका परीक्षा में अंकों का पुनर्निर्धारण किया जाता था। इसका तात्पर्य यह है कि बच्चों के उत्तरों के आधार पर प्रश्न पत्र की समीक्षा और इस समीक्षा के आधार पर नए मूल्यांकन निर्देश बनाना। दरअसल, इस प्रक्रिया का अर्थ यह स्वीकार करने के बराबर है कि कितनी भी कुशलता व सावधानी से प्रश्न व प्रश्न पत्र बनाए जाएं, उनमें खामियां रह सकती हैं और सुधार की गुंजाइश बनी रहती है। इसका यह भी अर्थ है कि बच्चे जिस ढंग से प्रश्नों को हल करते हैं, वह प्रश्न पत्र पर एक टिप्पणी है।

प्रश्न पत्र में मोटे तौर पर दो तरह की समस्याएं हो सकती हैं। पहली, हो सकता है कि भाषा के कारण, चित्रों के कारण बच्चे प्रश्न को ठीक उसी रूप में न समझें जिस रूप में प्रश्न पत्र निर्माता की अपेक्षा थी या यह भी हो सकता है कि उस प्रश्न के एकाधिक सही उत्तर हों। तब बच्चों के उत्तर अपेक्षित उत्तर से भिन्न हो सकते हैं। सामान्य परीक्षाओं में इन 'भिन्न' उत्तरों को 'गलत' माना जाता है। कभी यह नहीं सोचा जाता कि हो सकता है कि प्रश्न के स्वरूप के आधार पर ये 'भिन्न' उत्तर भी तार्किक रूप से उतने ही वैध हों। यदि ऐसा है तो इन्हें भी सही की श्रेणी में शुमार किया जाना चाहिए।

प्रश्न पत्र की समीक्षा की इस व्यवस्था का एक फायदा यह है कि आप खुली प्रकृति वाले या एक से अधिक वैकल्पिक उत्तरों वाले प्रश्न पूछ सकते हैं।

दूसरी समस्या का संबंध इस बात से है कि हो सकता है कि प्रश्न निर्माता ने कठिनाई का जो स्तर सोचा था, प्रश्न उससे कहीं ज्यादा या कम कठिन साबित हो। बहुत कठिन या बहुत सरल प्रश्न परीक्षा के उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते। इसलिए आपने जो भी अंक निर्धारित किए हों, बच्चों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें समायोजित करना जरूरी लगता है।

अंक पुनर्निर्धारण की यह प्रक्रिया इस तरह काम करती थी - परीक्षा शुरू होने से पहले ही पूरे जिले के रोल नंबर में से करीब 5-10 प्रतिशत रोल नंबर बेतरतीब (रैंडम) ढंग से चुन लिए जाते थे। अंक पुनर्निर्धारण गोष्ठी में इन उत्तर पुस्तिकाओं की जांच पूर्व-निर्धारित अंकों के आधार पर की जाती थी। शिक्षकों की एक-एक टोली एक-एक प्रश्न को जांचती थी। प्रत्येक छात्र के प्राप्तांक उसकी उत्तर पुस्तिका पर नहीं, एक अलग पर्ची पर लिखे जाते थे।

जांचने वाली टोली को अंक देने के अलावा यह भी देखना होता था कि 'सही' उत्तर के अलावा बच्चे और क्या-क्या उत्तर दे रहे हैं। गलत उत्तरों के विश्लेषण से पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तक तथा शिक्षण विधि पर एक फीडबैक भी प्राप्त हो जाता था। साथ ही, 'गलत' उत्तरों की समीक्षा की जाती थी ताकि यह पता लगाया जा सके कि कहीं ये 'गलत' उत्तर उस प्रश्न की किसी वैध अथवा संभव व्याख्या के नतीजे तो नहीं हैं।

बेतरतीबी से चुनी गई इन उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन हो जाने के बाद की प्रक्रिया सांख्यिकी के सुगमता सूचकांक और विभेदन सूचकांक के आधार पर चलती थी (इस प्रक्रिया का विस्तृत विवरण अन्यत्र उपलब्ध है)। इस प्रक्रिया के अंत में सारे प्रश्नों के नव-निर्धारित अंकों के आधार पर समस्त उत्तर पुस्तिकाओं की जांच सामान्य ढंग से की जाती थी।

इस प्रक्रिया ने होविशिका की परीक्षा पद्धति को लेकर कई सन्देहों व गलतफहमियों को जन्म दिया था। कार्यक्रम के आलोचकों का मत था इसमें कठिन प्रश्नों को निरस्त किया जाता है ताकि परीक्षा परिणाम सुधारा जा सके। उनको यह भी लगता था कि कठिन प्रश्न सिर्फ होशियार छात्र हल करते हैं, इसलिए इस प्रक्रिया से उन्हें अवश्य नुकसान होता होगा। कई लोगों को लगता था कि परीक्षा हो जाने के बाद यह सब करना ठीक नहीं है क्योंकि इससे परीक्षा की गंभीरता पर आंच आती है। प्रक्रिया से अनभिज्ञ लोगों को लगता था कि यह सब परीक्षा फल सुधारने के लिए किया जाता है। लेकिन जिन शिक्षकों ने इस प्रक्रिया में भाग लिया है उनमें से अधिकांश को यह अत्यंत उपयोगी व पारदर्शी प्रक्रिया लगती थी।

परमांक

परमांक (supermarks) की व्यवस्था कार्यक्रम के शुरुआती दौर में रखी गई थी जिसे बाद में छोड़ दिया। चूंकि प्रश्न पत्र में कई प्रश्न खुले अंत वाले (open-ended) होते हैं, इसलिए अक्सर उनके एक से अधिक सही उत्तर होते हैं। अपने अनुभव और छात्रों की सामान्य क्षमताओं के मद्देनजर परीक्षक आम तौर पर तय कर लेते हैं कि किसी प्रश्न विशेष के किस तरह के उत्तर पर पूरे अंक दिए जाएंगे। व्यवस्था यह थी कि यदि असाधारण परिस्थिति में कोई छात्र परीक्षकों की सर्वोत्तम अपेक्षा से भी बेहतर उत्तर दे या अपेक्षित स्तर से अधिक हुनर अथवा कल्पनाशीलता दर्शाए तो उसे प्रश्न के पूर्णांक के अतिरिक्त परमांक दिए जाते थे। कार्यक्रम में एक मौका ऐसा भी आया है कि इस प्रावधान की वजह से एक छात्र को 100 में से 104 अंक मिले थे।

स्तरीय प्रश्न बनाते रहने की चुनौती

यह देखना लाजमी है कि परीक्षा में (खासकर लिखित परीक्षा में) पूछे गए प्रश्न क्या होविशिका के उद्देश्यों को जांचने में सक्षम हो पा रहे थे? क्या प्रश्न बनाने में नवाचार की प्रवृत्ति नजर आती है?

जब तक होविशिका 16 स्कूल तक सीमित था, परीक्षा का संचालन किशोर भारती व फ्रेंड्स रूरल सेंटर से जुड़े स्रोत व्यक्ति करते थे। ये स्रोत व्यक्ति प्रायः विश्वविद्यालयों व प्रयोगशालाओं से जुड़े अध्यापक व वैज्ञानिक थे। इनके पास संबंधित विषयों का गहरा ज्ञान था और विषयों की आपसी कड़ियों की समझ थी। इसलिए 1975 से 1980 के बीच बने प्रश्नों और बाद में जिला स्तर पर बने प्रश्नों में काफी अन्तर देखा जा सकता है।

जिला स्तरीय प्रसार के बाद प्रश्न पत्र बनाने का काम पूरी तरह माध्यमिक शालाओं के शिक्षकों द्वारा किया जाने लगा था। यह तो मानना होगा कि शिक्षकों ने कार्यक्रम के उद्देश्यों के अनुरूप प्रश्न पत्र बनाने की भरसक कोशिश की। इन प्रश्न पत्रों को देखें तो एक जबर्दस्त बात यह नजर आती है कि एकाध अपवाद को छोड़कर प्रश्न कभी दोहराए नहीं गए।

परीक्षा में पूछे गए कुछ प्रश्न

वैसे तो होविशिका में इस बात को लेकर काफी सजगता थी कि प्रश्न न तो याददाश्त पर आधारित हों और न ही मात्र जानकारी को उगलवाने पर। मगर इस समझ को हकीकत में लागू करना और प्रश्न बनाना हमेशा आसान नहीं रहा (प्रश्नों के कुछ उदाहरण बॉक्स में देखें)।

परीक्षा का शिक्षण प्रक्रिया पर प्रभाव

पूरी प्रक्रिया का एक दुखदायी पहलू भी है। प्रश्न पत्रों के एक मोटे-मोटे आकलन से एक बात एकदम स्पष्ट रूप से उभरकर आती है। शिक्षकों का बहुत आग्रह होता था कि प्रश्न ऐसे बनाएं जिनका मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ ढंग से किया जा सके। यानी, जिनके मूल्यांकन के लिए स्पष्ट निर्देश लिखे जा सकें। इसका एक परिणाम यह हुआ कि खुले उत्तरों वाले, एकाधिक सही उत्तरों वाले प्रश्नों की संख्या कम होने लगी। दूसरा परिणाम यह हुआ कि उन प्रश्नों का अनुपात भी गिरा जिनमें बच्चों को विवरण लिखना हो क्योंकि उनमें भी मूल्यांकन में व्यक्तिनिष्ठता के प्रवेश की 'आशंका' रहती है।

दूसरी बात यह हुई कि ऐसे अध्यायों के प्रश्न ज्यादा पूछे जाने लगे जिनमें ऐसे प्रश्न बनाना आसान है जिनका मूल्यांकन करते समय दुविधा की गुंजाइश न रहे। 1982 से 2002 तक के उपलब्ध प्रश्न पत्रों के एक विश्लेषण से यह बात स्पष्ट उभरती है कि परीक्षा में विभिन्न अध्यायों का प्रतिनिधित्व काफी उबड़-खाबड़ हो चला था। सिर्फ अध्याय ही नहीं अलग-अलग अवधारणाओं, वैज्ञानिक विधि के तत्वों और कुशलताओं को भी समान स्थान नहीं मिल पाता था।

परीक्षा के माध्यम से सीखने की जांच करने में यह असंतुलन कई सवाल खड़े करता है। सबसे पहला सवाल तो यही उठता है कि प्रश्न पत्रों के इस पैटर्न का शिक्षण कार्य पर क्या असर हुआ होगा। शिक्षकों की बात मानें तो स्कूलों में शिक्षकों ने इस बात को ताड़ लिया था और अपने अध्यापन कार्य को तद्नुसार ढाल लिया था - जो अध्याय परीक्षा में नहीं आते थे, उनको नहीं पढ़ाया जाता था।

दूसरा सवाल, ऐसा क्यों हुआ। क्या यह प्रश्न पत्र बनाने वालों की सृजनात्मकता की सीमा थी या हमें यह मानना होगा कि कुछ अवधारणाएं, हुनर वगैरह ऐसे हैं जिनका परीक्षण इस तरह की परीक्षा में संभव ही नहीं है। दरअसल सवाल यह है कि क्या लिखित परीक्षा और प्रायोगिक परीक्षा के अलावा होशंगाबाद विज्ञान की परीक्षा में किसी और आयाम को जोड़ने की जरूरत थी? जैसे जीव विज्ञान के अध्यायों में अक्सर कोशिश यह थी कि बच्चे अपने पर्यावरण में पाए जाने वाले जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों का, फलों और फूलों का, कीड़े-मकोड़ों का, फसलों का, फसलों के रोगों व कीटों का अध्ययन करें

बॉक्स : प्रश्नों के कुछ नमूने

1. *कक्षा 6*

   गेहूं के कोई दो पौधों में अन्तर खोजने के लिए किन-किन गुणधर्मों को खोजना चाहिए? और क्यों? (कुछ पौधे परीक्षा कक्ष में रखे गए हैं, चाहो तो देख सकते हो।)

2. *कक्षा 8*

(क) विद्युत धारा द्वारा तांबे की कलई के जो प्रयोग तुमने किए हैं, उनके आधार पर बताओ कि लोहे के बर्तन पर तांबे की कलई किस प्रकार चढ़ाओगे? चित्र बनाकर समझाओ।

(ख) क्या मिट्टी के बर्तन पर भी इस विधि से तांबे की कलई कर सकते हैं? हां/नहीं अपने उत्तर का कारण भी लिखो।

3. *अपने मन से सोचकर एक ऐसा प्रयोग बताओ जिससे यह पता चले कि बीजों के अंकुरण के लिए सूर्य का प्रकाश आवश्यक है या नहीं।*

4. *सट्टा एक खेल है जो पैसों से खेला जाता है। इस खेल में 0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 कुल दस अंक होते हैं जिनमें से खिलाड़ी किसी एक को चुनकर उस पर पैसा लगा सकता है। वह अंक खुलने पर उसे जीता हुआ माना जाता है।*

   बताओ सट्टा खेलने वाले की जीतने की संभाविता कितनी होगी?

   जब सट्टा दो अंकों से खेला जाता है तब उसमें 00, 01, 02, ..., 98, 99 तक कुल सौ अंक होते हैं। इस खेल में खिलाड़ी किसी एक जोड़ी पर पैसा लगा सकता है एवं जोड़ी आने पर उसे जीता माना जाता है।

   बताओ सट्टे की जोड़ी खेलने वाले की जीतने की संभाविता कितनी होगी?

   उपरोक्त अवलोकनों के आधार पर बताओ कि सट्टा खेलना किसी व्यक्ति के लिए लाभप्रद है या हानिप्रद?

और इसके जरिए अध्ययन के वे तरीके सीखें जिनसे वे न सिर्फ पर्यावरण के प्रति जागरूक बनें बल्कि स्वतः अध्ययन करते रहें। अब इसका परीक्षण लिखित परीक्षा में या सीमित अवधि की प्रायोगिक परीक्षा कैसे करेंगे? मानव शरीर रचना में कोशिश यह है कि बच्चे अपने शरीर में हड्डियों को पहचानें, उनके जोड़ों को महसूस करें, शरीर के विभिन्न अंगों का एक मानसिक मॉडल बना सकें। इसे एक प्रश्न का रूप कैसे देंगे? जंतुओं का जीवन चक्र, सजीवों में वृद्धि व परिवर्धन, प्रजनन वगैरह सबके यही हाल हैं। पर्यावरण के प्रति सजगता को कैसे जांचेंगे? शायद इसके लिए शिक्षक को पढ़ाते-पढ़ाते ध्यान देना होगा।

परीक्षा में जिन अध्यायों का वर्चस्व था उनसे संबंधित सवाल देखने पर लगता है कि ये भी मूलतः आंकिक सवाल (न्यूमेरिकल्स) होते थे। यह तो माना जा सकता है कि मापन, ग्राफ वगैरह वस्तुतः गणितीय अवधारणाएं हैं मगर संयोग और संभाविता, अम्ल, क्षार और लवण तथा आपेक्षिक घनत्व में सवालों का संबंध प्रायः अवधारणात्मक समझ से न होकर गणनाओं से होता था।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत एक नए तरह की परीक्षा प्रणाली की रचना की गई थी। वैसे यह याद रखना भी जरूरी है कि आदर्श रूप में तो होविशिका समूह बच्चों के मूल्यांकन का काम शिक्षकों के भरोसे ही छोड़ना पसंद करता मगर मुख्यधारा की जरूरतों के मद्देनजर संभागीय बोर्ड परीक्षा एक मजबूरी थी।

परीक्षा में बच्चों को तनाव से मुक्त करने और रटने की प्रवृत्ति को दरकिनार करने के लिए खुली किताब की व्यवस्था की गई थी और शुरुआती वर्षों में असीमित समय का भी प्रावधान रखा गया था। परीक्षा को वास्तविक परिस्थितियों के प्रति संवेदी बनाने के लिए शिक्षकों के समूहों द्वारा प्रश्न पत्र का निर्माण और परीक्षा उपरांत प्रश्न पत्र की समीक्षा तथा अंकों के पुनर्निर्धारण की व्यवस्था भी बनाई गई थी। इसके अलावा बच्चों के प्रायोगिक हुनर को महत्त्व देने हेतु प्रायोगिक परीक्षा का प्रावधान भी किया गया था। परीक्षा को शायद पहली बार पाठ्यक्रम व शिक्षण पर फीडबैक का एक साधन भी होविशिका ने ही बनाया। जो परीक्षा प्रणाली अंततः लागू हुई वह सिर्फ होविशिका स्रोत समूह के दिमाग की उपज नहीं थी बल्कि शिक्षकों, पालकों, शिक्षा अधिकारियों के साथ चले एक सतत संवाद का नतीजा थी। यह बात एक ऐसे कार्यक्रम में लाजमी है जिसका मूल मकसद 'उत्कृष्टता के टापू' बनाना नहीं बल्कि मुख्य धारा में अधिकतम गुंजाइश निर्मित करना है।

यदि एक केंद्रीकृत परीक्षा की जरूरत को स्वीकार कर लिया जाए, तो सवाल यह उठता है कि उसमें किस ढंग के सवाल पूछे जाएं कि बच्चों का मूल्यांकन इस दृष्टि से हो सके कि उन्होंने क्या सीखा है। होविशिका परीक्षा का अनुभव बताता है कि जब आप एक केंद्रीकृत परीक्षा में प्रश्नों के माध्यम से यह जानने की कोशिश करते हैं तो कई बाधाएं उपस्थित होती हैं। कारण यह है कि आपको सवाल ऐसे पूछने होते हैं जिनके जवाब लिखित रूप में दिए जा सकें और उनका स्पष्ट मूल्यांकन हो सके। ◆

लेखक परिचयः एकलव्य संस्था के साथ लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। विज्ञान शिक्षण के प्रति प्रतिबद्धता उनके लेखन एवं शिक्षणशास्त्रीय पद्धतियों में दिखाई देती है। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के साथ जुड़कर भी विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काफी काम किया है। इस कार्यक्रम में किए गए काम को संदर्भ पुस्तिका 'मिडिल स्कूल रसायन' एवं शिक्षण अनुभवों को 'जश्ने तालीम' किताब में प्रकाशित कर सबके साथ साझा किया है।